"बनफूल" की कहानियाँ

41 - 60

हिन्दी अनुवाद: जयदीप शेखर

“बनफूल” की कहानियाँ

बँगला लघुकथाओं का हिन्दी अनुवाद

41 - 60

लेखक

“बनफूल”

अनुवादक

जयदीप शेखर

जगप्रभा

jagprabha.in

Cover Photo: Portrait of Banaphool (Oil Painting)
Artist: Rintu Roy
(Courtesy: Bengali newspaper 'Pratidin')

eBook

Banphool ki Kahaniyan: Stories of Banphool
Collection of 20 short stories in Hindi (41 to 60) translated from Bengali.
Original Author: ''Banaphool''
(Balai Chand Mukhopadhyay)
Hindi Translation: Jaydeep Das
(Pen Name: Jaydeep Shekhar)
Copyright © 2022 Translator
All rights reserved
Available at: jagprabha.in

"बनफूल"

(1899 - 1979)

बँगला साहित्य के सुप्रसिद्ध कथाकार "बनफूल" (बालाय चाँद मुखोपाध्याय) का रचना-संसार यूँ तो बहुत विशाल है- 14 नाटक, 60 उपन्यास, 586 कहानियाँ, हजारों कविताएं, अनगिनत लेख, कई एकांकियाँ और एक आत्मकथा; लेकिन वे जाने जाते हैं अपनी पेज भर लम्बी सरस, चुटीली कहानियों के कारण, जो विस्मय के साथ समाप्त होती हैं- जैसे कि एक अच्छा शेर। ऐसे शब्दचित्रों को अँग्रेजी में 'विनेट' (Vignettes) अर्थात् 'बेलबूटे' कहा जाता है।

विलक्षण प्रतिभा के धनी इस कथाकार के नाम से हिन्दीभाषी साहित्यरसिक कम परिचित हैं, क्योंकि उनकी रचनाओं का हिन्दी अनुवाद बहुत कम हुआ है- नहीं के बराबर।

प्रस्तुत हिन्दी अनुवादों में बहुत स्थानों पर "बनफूल" द्वारा प्रयुक्त संस्कृतनिष्ठ शब्दों को ज्यों-के-त्यों रहने दिया गया है, ताकि उनकी शैली के बारे में अनुमान लगाया जा सके।

***

कहानियाँ

41. आँखें 6
42. एक बूँद कहानी 7
43. बुधनी 8
44. अन्तर्यामी की करतूत 11
45. श्रीपति सामन्त 13
46. शरशैया 18
47. भ्रष्ट-लग्न 22
48. जॉर्जेट की साड़ी 28
49. भूत 34
50. मनुष्य 38
51. चार चित्र 41
52. बाघा 44
53. सरला 48
54. यूथिका 54
55. खट्टी दही 57
56. चोर 59
57. मुखर्जी और चटर्जी 68
58. कानून 72
59. “लॉक जॉ” 75
60. संक्षेप में उपन्यास 77

41. आँखें

(चोख गेलो)

दूसरों के लिए शायद वह खूबसूरत नहीं थी।

मैं भी उसे कोई स्वप्नसुन्दरी मानता था- ऐसी बात नहीं है, लेकिन उसे मैं प्यार करता था। उसकी दोनों आँखों में कैसा एक जादू था, जिसे मैं समझ नहीं पाता था। ऐसी स्वप्नमयी सुन्दर आँखें मैंने जीवन में दूसरी नहीं देखी थीं। एक शोख लड़की के रूप में भी वह जानी जाती थी।

उस कुरूपा एवं चंचला मिनि ने मेरा चित्त-हरण कर लिया। उसकी आँखों ने मुझे मंत्रमुग्ध कर दिया था।

याद है, एक बार एकान्त में उसे अंकों में भरकर मैंने कहा था, "जी करता है, तुम्हारी दोनों आँखें छीनकर रख लूँ।"

"क्यों भला?"

"इन्हीं दोनों ने तो मुझे पागल बना रखा है। मैं तो सबसे ज्यादा इन्हीं दोनों को प्यार करता हूँ।"

इतना प्यार करता था, फिर भी उसे पा नहीं सका।

अज्ञात अपरिचित कोई और गाजे-बाजे के साथ आकर समारोहपूर्वक उसे ले गया।

दिल को बड़ा धक्का लगा।

इस दर्द को मैं सह भी जाता अगर साथ-ही-साथ एक और मर्मान्तिक घटना नहीं घटती।

मिनि जब मायके आयी, तब देखा- उसकी दोनों आँखें अन्धी हो गयी थीं। सुनने में आया कि आँखों में गुलाब जल डालने के क्रम में उसने गलती से कोई और दवा आँखों में डाल ली थी।

मेरे साथ एक बार आड़ में मुलाकात हुई।

बोला, "असावधानी के चलते ऐसी आँखें चली गयीं!"

उसने उत्तर दिया, "आँखें क्यों जो गयीं- यह अगर नहीं समझ पाये हो, तो न जानना ही ठीक है।"

***

42. एक बूँद कहानी

(एक फोंटा गल्प)

रामगंज के जमीन्दार श्यामबाबू एक कल्पनाशील व्यक्ति थे- यह जानता था, किन्तु उनकी कल्पनाशीलता इतनी दूर तक जा सकती है- इसका अनुमान नहीं था। उस दिन सुबह उठते ही एक निमंत्रणपत्र मिला। श्यामबाबू ने मातृश्राद्ध में सबान्धव निमंत्रित कर रखा था। पत्र पाकर मेरे मन में कैसा एक खटका लगा। सोचने लगा- श्यामबाबू की माताजी की तबियत खराब हुई और कोई खबर ही नहीं मिली! जबकि मैं इस इलाके का एकमात्र डॉक्टर था।

जो भी हो, जब निमंत्रित किया है, तो जाना ही होगा। गया। जाकर देखा, श्यामबाबू गले में गमछा लपेटे सबकी अभ्यर्थना करने में जुटे थे। उनके चेहरे पर गम्भीर शोक की छाया थी। मुझे देखते ही बोले, "आईए डॉक्टर बाबू, बैठने की कृपा की जाय।"

दो-एक बातों के बाद पूछा, "आपकी माताजी को क्या हुआ था?"

क्षणभर के लिए विस्मित होकर श्यामबाबू बोले, "ओह, आपने नहीं सुन रखा है शायद। मेरी माँ तो मेरे बचपन में ही स्वर्ग सिधार गयी थीं, उनकी तो मुझे याद भी नहीं। ये मेरी एक और माँ- सचमुच की माँ थीं।"

कहते हुए सज्जन का गला रुँध आया।

मैंने कहा, "कुछ समझा नहीं, कौन थीं वे?"

वे बोले, "मेरी मंगला गाय। मेरी माँ मेरे बचपन में कब चल बसी थीं याद नहीं, तब से इस गाय ने ही तो दूध पिलाकर मुझे इतना बड़ा किया है। उसके दूध से ही मेरा तन-मन हृष्ट-पुष्ट हुआ है। मेरी यही माँ आज इतने दिनों बाद मुझे छोड़ के चली गयी डॉक्टर बाबू।"

इतना कहकर वे फफक-फफक कर रोने लगे।

मेरे विस्मय की कोई सीमा न रही।

***

43. बुधनी

(बूधनी)

जीवन की तुलना अगर दीपक के साथ की जाय, तो बिल्टू के जीवन-दीप का तेल समाप्त हो गया है- यह बात बिलकुल नहीं कही जा सकती। कारण, बिल्टू के जीवन रूपी दीपक में तेल पूरा था, पलीता भी ठीक था और लौ भी उज्जवल होकर जल रही थी, लेकिन यह लौ बुझेगी। एक जोरदार फूँक के साथ इसे बुझा दिया जायेगा। कल उसकी फाँसी है।

वह दोषी है या निर्दोष- यह आलोचना हमारे अधिकार क्षेत्र से बाहर है। कानून की नजर में वह दोषी साबित हुआ है और समाज की भलाई के लिए उसे सजा दी जा रही है। शायद उसको लेकर मैं कोई माथापच्ची ही नहीं करता अगर उस दिन जेल घूमने के क्रम में उसकी आर्त-करूण चित्कार को न सुनता!

"बुधनी... बुधनी... बुधनी... बुधनी... बुधनी...!" भीत कातर स्वर में वह लगातार चिल्लाये जा रहा था। बुधनी उसकी स्त्री का नाम था।

-दो-

हजारीबाग के पर्वतीय अँचलों में इनका वास है। इन पहाड़ियों की तलहटी में ही एकदा धनुर्धारी बिल्टू ने शिकार सन्धान के दौरान बुधनी को देखा एक महुए के वृक्ष के नीचे। कसौटी पत्थर-जैसी कृष्णांगी किशोरी बुधनी। सभ्य कोई युवक छाया-प्रकाश से आच्च्छादित महुआतरु के नीचे खड़ी उस किशोरी को देखकर उदासीन भाव से आगे बढ़ जाता, बिल्टू ऐसा नहीं कर पाया। वन्य पशु के समान उसने उसका पीछा किया था। त्रस्त हिरणी के समान द्रुतवेग से पलायन कर बुधनी ने निस्तार पाया। उस समय के लिए भले उसने निस्तार पा लिया, लेकिन बिल्टू ने उसे आश्वस्त नहीं होने दिया। वह असभ्य देखते ही उसके पीछे पड़ जाता।

-तीन-

इसके बाद वह प्रतीक्षित दिन आया।

इनके बीच विवाह की विचित्र प्रथा प्रचलित थी। समय-समय पर सुबह विस्तीर्ण मैदान में इनकी सभा बैठती थी। इस सभा में कुमार एवं कुमारियों का समागम होता था। एक पात्र में थोड़ा-सा सिन्दूर रखा रहता था। कोई अविवाहित

युवक जिस कुमारी का पाणिप्रार्थी होता था, उसे उस कुमारी के मस्तक पर सिन्दूर लगा देना होता था। सिन्दूर लगाते ही युवक के प्राण संकट में पड़ जाते थे। उस कुमारी के आत्मीय-स्वजन तत्क्षणात् धनुर्वाण, बरछा, भाला लेकर युवक को दौड़ायेंगे और युवक अगर आत्मरक्षा न कर पाये, तो उसकी मृत्यु सुनिश्चित होती थी। लेकिन अगर दिन भर आत्मरक्षा करने में वह सफल रहता, तो सूर्यास्त के बाद आत्मीय-स्वजन महा आनन्द में मृदंग बाँसुरी के साथ कलरव करते हुए कन्या को वर के घर तक पहुँचा आयेंगे।

इस शक्ति-परीक्षा में उत्तीर्ण होकर बिल्टू ने बुधनी को जय किया था। हाल की ही तो बात है- अभी दो साल भी नहीं हुए थे।

-चार-

असभ्य बिल्टू ने जंगली बुधनी को पाकर किस भाषा में किस भाव-भंगिमा के साथ अपना प्रणय-निवेदन किया था- यह मैं नहीं जानता। कल्पना कर पाना भी मेरे लिए कठिन है। मैं ठहरा ड्रॉइंगरूम-विहारी सभ्य आदमी, बर्बर वन्य-दम्पत्ति के अदब-कायदे मैं नहीं जानता। जो लोग गुफा में सोये शार्दूल को भालों से बिंधकर मार सकते हैं, जो दौड़ में मृग को चुनौती देते हैं, उत्तुंग पहाड़ों पर अहरह चढ़ते-उतरते हैं, पूर्णिमा की रात्रि में महुआ का मद्य पीकर आनन्द का झरना बहा देते हैं- उनकी प्रणयलीला की कल्पना करने का दुःसाहस मेरे पास नहीं है।

सिर्फ इतना जानता हूँ कि विवाह के बाद बिल्टू ने एक पल के लिए भी बुधनी को अलग नहीं किया था- एक पल के लिए भी नहीं। वन जंगल पर्वत गुहा में यह बर्बर-दम्पत्ति अर्द्धनग्न देह में साथ-साथ विचरण किया करते थे। बुधनी के जूड़े में होता था चमकदार लाल पलाश फूल और बिल्टू के हाथों में बाँस की बाँसुरी- यही उनका सम्बल था।

-पाँच-

सहसा एक व्यवधान आ गया।

बुधनी ने एक सन्तान को जन्म दिया। असहाय नन्हा मानव-शिशु। बुधनी के आनन्द का ठिकाना नहीं रहा। बर्बर जननी में भी मातृत्व है, उसके अन्तर में भी सन्तान-लिप्सा स्नेहमयी जननी की कल्याणी मूर्ति में उद्भासित होती है। नारीत्व की सीढ़ियाँ चढ़कर बुधनी मातृत्वलोक तक पहुँच गयी। बिल्टू ने देखा-

यह क्या! इस शिशु ने तो बुधनी पर अधिकार जमा लिया था! बुधनी अब अकेले उसकी नहीं रही! असह्य!

-छह-

बिल्टू की फाँसी देखने गया था। वह मृत्यु के पहले तक चीखता रहा- "बुधनी... बुधनी... बुधनी... बुधनी... !" भगवान का नाम तक नहीं लिया।

नृशंस शिशुहत्याकारी के प्रति किसी की भी सहानुभूति नहीं थी।

***

44. अन्तर्यामी की करतूत

(अन्तर्यामीर काण्ड)

जब नीन्द टूटी, तब रात गहरी थी। बंक पर उठकर बैठा और और चारों तरफ देखकर जोर से ही बोल पड़ा, "जान बची।" बोगी बिलकुल खाली हो गयी थी। जब चढ़ा था, तब बहुत भीड़ थी। अब तो मैं ही राजा था! एक कूद में नीचे उतरते ही लेकिन राजत्व खत्म हो गया। उल्टे, थोड़ा असहज ही होना पड़ा।

बंक के ठीक नीचे ही एक युवती बैठी हुई थी।

अकेली।

मेरे हाथ में एक किताब थी। किताब को सीट पर रखकर मैं अकारण ही सीधे कूपे के दूसरे किनारे पर चला गया और खिड़की से बाहर मुँह निकाल कर झाँकने लगा।

अन्तर्यामी मन ने कहा- लड़की ठीक नहीं है।

गुस्सा आने लगा। कहाँ से आ टपकी यह?

गाड़ी खाली देखकर सोचा था, गाना गाऊँगा। संगीत विद्या में मैं पारंगत नहीं हूँ, मगर ट्रेन में चढ़ने के बाद और परिचित कोई आस-पास नहीं रहने पर मैं खुले गले से गाया करता था। लड़की हालाँकि परिचित नहीं थी, लेकिन अन्तर्यामी मन ने दृढ़तापूर्वक कहा- इनके सामने गाना गाना नहीं चलेगा।

आँख में कोयले का कण आ गिरा।

सिर अन्दर खींचना पड़ा। कोयलाक्रान्त आँख को रगड़ते-रगड़ते देखा, लड़की ने मेरी किताब पर अधिकार जमा लिया था, पन्ने पलट कर देख रही थी और मन्द-मन्द मुस्कुरा रही थी।

अन्तर्यामी मन ने भौंहे नचाते हुए कहा- कहा था न!

परिचय होने पर पाया, लड़की सुशिक्षित थी। सास की बीमारी पर पति का टेलीग्राम पाकर जा रही थी। साथ में कोई और नहीं था, इसलिए जानबूझ कर भीड़ वाली बोगी में चढ़ी थी। सोची थी, सभी यही सोचेंगे कि कोई-न-कोई इसके साथ में है। गाड़ी बिलकुल खाली हो जाने पर थोड़ी मुश्किल हो गयी है। खैर, अगले स्टेशन पर ही उतरना है।

अगला स्टेशन आया।

लड़की उतर गयी। अकेला बैठा हूँ। लड़की में कोई कमी न ढूँढ़ पाने के कारण अन्तर्यामी मन बौखलाने लगा। ऐसे समय में नजर गयी, सीट के नीचे कोई एक

चीज पड़ी है। उस युवती का कुछ रह गया क्या? जल्दी से खींचकर निकाला। छोटी-सी लकड़ी की पेटी। अन्दर कपड़े से कुछ ढका हुआ था।

कपड़ा हटाते ही सिहर गया।

अन्दर एक मृत शिशु।

जल्दी से बक्से को यथास्थान रखा।

क्रूर हँसी हँसकर अन्तर्यामी मन ने कहा- देख लिया!

अगले स्टेशन पर ट्रेन रुकी।

सोचा, बोगी से उतर जाऊँ। उठने जा ही रहा था कि देखा, खाकी हाफ शर्ट और हाफ पैण्ट पहने एक व्यक्ति हड़बड़ाते हुए बोगी में चढ़े, साथ में एक पुलिस कॉन्सटेबल। सत्यानाश! हाफ पैण्ट पहने व्यक्ति ने कड़क कर कहा, "अरे बेवकूफ, कहाँ पर रखा था?"

"वहीं तो है- ब्रेंची के नीचे।" कहकर कॉन्सटेबल ने सीट के नीचे पड़ी लकड़ी की उस पेटी को दिखाया और उतर गया। ट्रेन चल पड़ी। मेरा उतरना नहीं हो पाया।

सज्जन के साथ बातचीत हुई। दारोगा थे वे। इसी क्रम में मृत शिशु का इतिहास भी जाना। यह शिशु दारोगा साहब के इलाके में कहीं पड़ा पाया गया था और इस सिलसिले में एक व्यक्ति को उन्होंने गिरफ्तार भी किया था। शिशु को सदर अस्पताल में पोस्टमार्टम के लिए वे लेकर जा रहे थे। इस कॉन्सटेबल के जिम्मे इसे सौंपकर वे खुद अभी तक सेकेण्ड क्लास की बोगी में सो रहे थे। कॉन्सटेबल इतना बेवकूफ कि थर्ड क्लास बोगी में एक सीट के नीचे इसे रखकर खुद इण्टर क्लास में मजे से सो रहा था। यदि यह इधर-उधर हो जाता तो? एक तो इसे इस तरह लेकर जाना ही कुछ हद तक गैर-कानूनी है।

अब देखा, अन्तर्यामी मन लड़की के सम्बन्ध में एक शब्द भी न बोलते हुए बेचारे दारोगा के पीछे पड़ गया था और ज्ञानी के समान सिर हिलाते हुए कह रहा था- समझ रहा हूँ। घूँसखोर कहीं के!

***

45. श्रीपति सामन्त

(श्रीपति सामन्त)

ट्रेन में भीषण भीड़ थी।

हो सकता है तिल धरने लायक स्थान हो, मगर मनुष्य-धारण के लिए तो स्थानाभाव था ही। तृतीय श्रेणी में लोग लटक रहे थे, मध्यम श्रेणी ठस्सम-ठस थी, यहाँ तक कि द्वितीय श्रेणी में भी सभी बर्थ अधिकृत हो चुके थे। केवल प्रथम श्रेणी को ही खाली कहा जा सकता था। वहाँ भी साहेबी पोशाक पहने एक सज्जन बैठे हुए थे।

ट्रेन एक स्टेशन पर खड़ी थी।

रात के आठ बज रहे होंगे।

श्रीपति सामन्त ने सारे प्लेटफार्म पर भाग-दौड़ करके देख लिया, कहीं चढ़ने तक का उपाय नहीं था। जबकि वे दृढ़प्रतिज्ञ थे कि सोकर ही जाना है। टिकट तृतीय श्रेणी की थी।

सभी नेपोलियन नहीं होते। सामन्त महाशय तो नहीं ही थे। अतः उनके द्वारा यह असम्भव सम्भव नहीं हुआ। कई बार इधर-उधर दौड़ लेने के बाद आज इस ट्रेन से तृतीय श्रेणी में सोते हुए कोलकाता जाने की आशा का सामन्त महाशय को अन्ततः परित्याग करना पड़ा।

लेकिन आज उन्हें नीन्द की बहुत जरुरत थी।

बीती तीन रातें वे बिलकुल सो नहीं पाये थे।

सर्वेश्वरबाबू की नातिन के विवाह के शोर-शराबे में दो रातें वे पलकें नहीं झपका पाये थे।

कल तो भयानक गर्मी थी।

लोग पंखा झलेंगे कि सोयेंगे!

स्थानच्युत होते चश्मे को सम्भाल कर सामन्त महाशय ने अचानक कुली से कहा, “अरे रुकना जरा!”

श्रीपति सामन्त नेपोलियन नहीं थे- यह सही है, लेकिन वे स्वर्गीय छिदाम सामन्त के यशस्वी पुत्र हैं- जिन छिदाम सामन्त की प्रतिभा का गुणगान आज भी अबाल-वृद्ध सभी करते हैं।

श्रीपति सामन्त ठिठक कर रूक गये।

बिजली के समान एक बुद्धि उनके दिमाग में खेल गयी।

गार्ड के साथ कथोपकथन-निरत कैप पहने छोटेबाबू के निकट जाकर हथेलियाँ मलते हुए सामन्त महाशय बोले-

"ट्रेन में चढ़ पाना तो नहीं हो पायेगा हुजूर, यदि अनुमति दें, तो यहीं इस कोने में सवार हो जाऊँ- "

कहकर सामन्त महाशय ने प्रथम श्रेणी के साथ संलग्न नौकरों के डिब्बे की तरफ ईशारा किया।

स्टेशन के छोटेबाबू इस नितान्त भारतीय वृद्ध की हिम्मत पर शुरू में चकित हुए, पर बाद में उनमें दयाभाव उत्पन्न हुआ। सोचे- मूर्ख है, शायद जानता नहीं है- इसलिए।

बोले, "यह तो फर्स्ट क्लास है भाई- "

सामन्त महाशय इतने मूर्ख तो नहीं थे कि 'फसट किलास' को नहीं पहचाने।

वे विनीत भाव से फिर बोले, "हुजूर, उसमें नहीं, मैं इसकी बात कर रहा था। इसमें तो गद्दी-वद्दी कुछ है नहीं। यदि हुजूर दया करें- मैं ठहरा बूढ़ा आदमी- गरीब आदमी हूँ- मेरी तबियत भी ठीक नहीं है- विश्वास कीजिये हुजूर, तीन रातों से सोया नहीं हूँ- "

प्रथम श्रेणी के यात्री ने खिड़की से मुँह बाहर निकाल रखा था। उनके होंठों के एक कोने से धूमायमान पाईप लटक रहा था।

सामन्त-छोटा बाबू संवाद का वे उपभोग कर रहे थे।

सामन्त महाशय का बाह्यावरण कोई मनोहारी नहीं था।

पहनावे में थी एक बिना किनारी वाली अधमैली धोती, खाली बदन, पैरों में एक जोड़ी धूल-धूसरित देशी मोची के हाथों बनी चप्पल, आँखों में तिरछा टिका चनके हुए काँच का चश्मा, चश्मे का फ्रेम निकेल का था, उसकी भी दाहिने वाली डण्डी नहीं थी- उस तरफ धागा बँधा हुआ था।

सामन्त महाशय के कन्धे एक तरफ जरा झुके हुए थे, चक्षु दोनों रक्ताभ, भौंहें नहीं। आँखों को देखकर लेकिन उनके प्रति श्रद्धा ही उत्पन्न होती थी। झुर्रियों से भरे सफाचट चेहरे से विनम्रता टपकती थी। सिर गंजा। वर्ण नातिगौर-कृष्ण। हाथ में नारियल का हुक्का।

छोटाबाबू बोले, "इन साहेब को बोलिए। इन्हीं के नौकर के लिए यह डिब्बा है। इन्हें अगर आपत्ति नहीं है, तो मुझे भला क्या आपत्ति होगी- "

प्रथम श्रेणी के वे यात्री साहेबी पोशाक पहने होने पर भी बँगाली ही थे। लेकिन उन्होंने सिर हिलाकर उत्तर दिया-

"दैट कान्ट बी। आई कान्ट अलाव।"

सामन्त महाशय ने हाथ जोड़कर कहा, "मैं भी तो हुजूर का नौकर ही हूँ- नौकर नहीं तो और क्या हूँ! यदि दया करके अनुमति दे देते- "

इस वृद्ध के साथ वाग्वितण्डा कर समय नष्ट करने में साहेब ने और कोई रुचि प्रकट नहीं की। पाईप सहित उन्होंने मुँह अन्दर खींचकर बिजली के पंखे को फुल स्पीड में चला दिया।

टन्न-टन्न कर गाड़ी खुलने की पहली घण्टी बजी।

सामन्त महाशय ने असहाय भाव से और एक बार तृतीय श्रेणी के डिब्बों की तरफ देखा।

पायदान तक लोग लटक रहे थे।

आखिरकार इन्हीं में से किसी में घुसना होगा! जबकि-

सामन्त ने फैसला कर लिया।

"सुन रहे हैं हुजूर, मैं इसी में चढ़ रहा हूँ। 'कुरू' को भेज दीजिएगा, मैं भाड़ा चुका दूँगा। अरे ले आओ, ले आओ, इसी में ले आओ सब, ओ कालीकिंकर- श्यामापद, कहाँ गया- बांछा, ओ बांछा- इधर- यहीं चढ़ाओ सब- "

हड़बड़ाते हुए कालीकिंकर, श्यामापद, बांछा सबने मिलकर साल पत्ते के कई गट्ठर, खाली बोरों का एक बण्डल, दो हाण्डी गुड़, एक तरबूज, एक बैंठी, एक बंशी, नाना प्रकार की गठरियों एवं पोटलियों से भरी दो विशाल टोकरियों और एक टिन घी सहित सामन्त महाशय को फर्स्ट क्लास में ही चढ़ा दिया। कालीकिंकर और श्यामापद पदधूलि लेकर उतर गये।

सामन्त महाशय ने हँसकर बांछा से कहा, "तुम इसी पास वाले डिब्बे में रहो तब। तुम्हारे तो मजे हो गये रे! तम्बाकू सम्भाल कर रखना।"

बांछा उतरकर पास वाले (नौकरों वाले) डिब्बे में चला गया।

ट्रेन खुल गयी।

नारियल हुक्के में एक कश लगाकर गला खंखार कर कफ इकट्ठा कर उसे आवाज के साथ बाहर फेंककर सामन्त महाशय ने साहेब को लक्ष्य करके कहा-

"आज नीन्द का पूरा होना बेहद जरूरी है हुजूर। कल सुबह दिमाग ठीक रखना पड़ेगा- बड़ी रकम की खरीद-बिक्री करनी है।"

यथासमय गुम्फश्मश्रु-समन्वित पंजाबी क्रू ने आकर दर्शन दिया और भाड़ा माँगा।

सीट पर उँकड़ू होकर क्रू की तरफ हल्का-सा पीठ फेरकर बैठकर सामन्त महाशय ने फेंटे से बड़ा-सा एक बटुआ निकाला, उसे सीट पर पलटा, क्रू के निर्देशानुसार अपना एवं अपने असबाब का भाड़ा चुकाया और रसीद सहित बटुए को पुनराय कटिबद्ध कर लिया।

कोई अगर गिनकर देखता, तब उसे पता चलता कि सामन्त महाशय के बटुए में रेजगारी के अलावे दस हजार रुपये के सिर्फ नोट ही थे।

इसके बाद पंजाबी क्रू महोदय बँगाली साहेब की तरफ मुड़कर बोले, "योर टिकेट प्लीज।"

"माय टिकेट इज इन माय सूटकेस। प्लीज टेक माय वर्ड फॉर इट।"

"आई कान्ट पंच योर वर्ड। माय ड्युटी इज टू पंच टिकेट्स।"

अन्त में पाया गया कि बँगाली साहेब के पास दियासलाई, पाईप और एक सिनेमा-साप्ताहिक के अलावे कुछ भी नहीं था।

बहसबाजी शुरू हो गयी।

विशुद्ध अँग्रेजी में ज्यादा समय तक बहसबाजी करना मुश्किल है।

अतः दोनों ही राष्ट्रभाषा हिन्दी के शरणापन्न हुए।

सामन्त महाशय नीन्द के आगोश में जाने लगे थे- तन्द्रा टूट गयी। वे उठकर बैठ गये।

अब यह कौन-सा फसाद खड़ा हो गया! लगता है सोने नहीं देंगे!

"दुर्गा श्रीहरि- "

सामन्त महाशय ने घोष किया।

अचानक सामन्त महाशय के कानों में गया कि 'कुरू' साहेब को कुछ ऐसा कह रहे हैं कि बँगाली बाबूओं को वे अच्छी तरह से पहचानते हैं, इसलिए-

सामन्त महाशय की लोमहीन भौंहे कुंचित हुईं।

उन्होंने फिर उकड़ूँ बैठकर अपना बटुआ निकाला।

"ओ कुरू साहेब, इन फालतू बातों पर बहस करके क्या फायदा! कितना रुपया लगेगा सो बोलिये, मैं ही दे देता हूँ- आज नीन्द पूरी होना बेहद जरूरी है, जहाँ बावन वहाँ तिरेपन सही- "

साहेब और क्रू दोनों विस्मित हुए। क्या बोल रहा है!

सामन्त महाशय ने लेकिल पूरा भाड़ा चुका दिया और साहेब से बोले, "आप भी तो हुजूर कोलकाता ही जा रहे हैं। मेरी गद्दी में रुपया वापस कर दीजिएगा अपनी सुविधानुसार।"